भूमिका

आत्मकथा आधुनिक हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है, जिसके सहारे आत्मकथाकार अपने अतीत का वर्णन बहुत ही सहजता, स्पष्टता, यथार्थता तथा ईमानदारी के साथ करता है। आत्मकथा व्यक्ति का वह अन्तःसाक्ष्य है जो उसकी सम्पूर्ण जीवन यात्रा का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है । आत्मकथाकार अपने अतीत के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को सच्चाई और ईमानदारी के साथ निष्पक्ष भाव से अभिव्यक्त करता है । आत्मकथा के आलोक में ही संबंधित आत्मकथाकार के व्यक्तित्व का, उसके विकासक्रम का तथा उसके जीवन सर्वस्व का प्रामाणिक परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि विधाओं का उद्भव और विकास उन्नीसवीं सदी में हुआ तो कथेतर साहित्य के रूप में विकसित रेखाचित्र, निबंध, जीवनी, संस्मरण, डायरी, पत्र साहित्य, यात्रा साहित्य, रिपोर्ताज, आत्मकथा आदि का विकास बीसवीं सदी की देन है। वास्तव में हिंदी में आत्मकथा साहित्य का विकास गद्य की अन्य विधाओं की तुलना में काफी विलम्ब से हुआ है। लेकिन कई विद्वानों का मानना है की आत्मकथा साहित्य का मूलबीज मध्यकाल में दिखाई पड़ता है। इस मत को स्वीकार करने वाले विद्वान यह मानते हैं की सन् 1641 ई. में जैन कवि बनारसीदास द्वारा रचित 'अर्धकथानक' हिंदी की पहली आत्मकथा है।

आज के आत्मकथा साहित्य को मध्यकालीन साहित्य के विकसित रूप में स्वीकार करने का अधिकांश विद्वानों ने विरोध किया है। उनका मानना है कि यह मध्यकालीन आत्मकथा जैन संस्थाओं तक सीमित रही । इस के कारण सन् 1943 ई. तक

साहित्य जगत इससे अपरिचित था। अतः इसका प्रभाव हिंदी आत्मकथा साहित्य पर नहीं हुआ है और उससे किसी भी साहित्यकार को प्रेरणा नहीं मिली है। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि हिंदी आत्मकथा साहित्य को पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव और युगीन परिवेश की देन के रूप में स्वीकार करनी चाहिए।

आत्मकथा लेखन बड़े धैर्य, साहस, कष्टसाध्य और जीवट का काम माना जाता है। इसमें गोपनीयता न होकर आत्मप्रकटन होता है। आत्मकथाकार अपनी कमियों, शक्तियों और सीमाओं, गुणों और दोषों को ईमानदारी से प्रस्तुत करता हैं। आत्मकथा केवल आत्मप्रचार, आत्मप्रकाशन, आत्मप्रदर्शन, आत्म सम्प्रेषण, आत्म विज्ञापन आदि की विधा न होकर आत्म विश्लेषण, आत्म निरीक्षण, आत्म परिक्षण और आत्म विवेचन की भी विधा मानी जाती है।

'अर्धकथानक' के दो सौ अड़तीस वर्षों के उपरांत सन् 1881 ई. में स्वामी दयानंद सरस्वती की आत्मकथा 'आत्मचरित' का प्रकाशन हुआ। अन्य गद्य विधाओं की भाँति आत्मकथा विधा की भी मजबूत नींव भारतेंदु युग में ही पड़ी। भारतेंदु युगीन आत्मकथाकारों ने जिस विशाल भवन की नींव डाली, उसे ही ही कालान्तर में साहित्यकारों ने निर्मित किया। आत्मकथा के विकास की दृष्टि से द्विवेदी युग को पल्लव काल कहा जा सकता है। 1932 ई. में प्रेमचंद ने 'हंस' पत्रिका का आत्मकथांक निकालकर इस विधा को और प्रोत्साहन दिया।

स्वातंत्र्योत्तर युग में आत्मकथा साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व बदलाव देखने को मिलता है। हाल के कुछ वर्षों में आत्मकथा लेखन का क्षेत्र और विस्तृत हुआ है

। आत्मकथा लेखन का उदेश्य अब केवल जीवन के इतिहास का कलात्मक प्रस्तुतीकरण मात्र नहीं रहा बल्कि विचारधारा की अभिव्यक्ति, समाज परिवर्तन आदि उदेश्यों के लिए भी लिखी जा रही हैं। दलित आत्मकथाएँ एवं महिला आत्मकथाएँ इन्हीं सन्दर्भों से अपने कथ्य एवं उदेश्यों में नवीनता लिए हुए हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' , मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे' , श्यौराज सिंह बेचैन की 'अपना बचपन अपने कन्धों पर', कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' आदि दलित चेतना की महत्वपूर्ण आत्मकथाएँ हैं। वहीं कुसुम अंसल (जो कहा नहीं गया), कृष्णा अग्निहोत्री (लगता नहीं है दिल मेरा), पद्मा सचदेव (बूँद बावड़ी), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या तक), चंद्र किरण सौनरेक्सा (पिंजरे की मैना), मैत्रेयी पुष्पा (कस्तुरी कुंडल बसै एवं गुड़िया भीतर गुड़िय) आदि की आत्मकथाएँ भी स्त्री चेतना की प्रतिनिधि कृति के रूप में सामने आई हैं।

आधुनिक काल में हिंदी में कई आत्मकथाएँ आ चुकी हैं जिनमें स्त्री आत्मकथाओं की संख्या भी काफी है । इन आत्मकथाओं में उनकी विचारधारा, जीवनानुभव और व्यक्तित्व इत्यादि पर प्रकाश पड़ता है, साथ ही शैली भी परिनिष्ठित है। सन् 2008 में आई मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा पढ़ते हुए मुझे यह अहसास हुआ की यह कृति एक ऐसी लेखिका के भीतर से उपजी है जो ग्राम्य परिवेश से, देश की राजधानी और वहाँ भी एक प्रतिष्ठित लेखिका होने की लंबी यात्रा के दौरान तमाम नैतिक, सामाजिक और परिवेशगत दबावों के बीच से घुट-घुटकर और कभी विद्रोही तेवरों के साथ गुजरी है। अतः मैंने मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' को अपने शोधकार्य का विषय बनाने का निश्चय किया।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध में मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' का विश्लेषण करने के लिए विश्लेषणात्मक एवं समीक्षात्मक विधि का प्रयोग किया गया है । प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध को चार अध्यायों में विभक्त किया गया है । प्रथम अध्याय का शीर्षक है-**'आत्मकथा का अर्थ, स्वरूप और विकास'** । इसे दो उप अध्यायों में बाँटा गया है जिसमें आत्मकथा का शाब्दिक अर्थ एवं विभिन्न विद्वानों के मतों के माध्यम से आत्मकथा का अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया है । इसके साथ ही आत्मकथा का विकास, उसका स्वरूप तथा हिंदी आत्मकथा साहित्य का वर्णन किया गया है । इसी अध्याय में स्त्री आत्मकथा के विकास को भी दिखाया गया है ।

दूसरे अध्याय-**''गुड़िया भीतर गुड़िया' में पारिवारिक एवं सामाजिक परिदृश्य'** को दो उप अध्यायों में विभाजित कर आत्मकथा में अभिव्यक्त पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस अध्याय में लेखिका के द्वारा किए गए सामाजिक एवं पारिवारिक संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है ।

तीसरे अध्याय का शीर्षक है -**''गुड़िया भीतर गुड़िया' में सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिदृश्य** ।' इस अध्याय को दो उप अध्यायों में बाँटकर आत्मकथा में व्यक्त लेखिका के सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य का वर्णन किया गया है । इस अध्याय के माध्यम से यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है की किस तरह से एक स्त्री अपने समाज में अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए इस पुरुषवादी सत्ता के खिलाफ सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से संघर्ष कर रही है ।

चौथे अध्याय का शीर्षक है - **"गुड़िया भीतर गुड़िया' का शिल्प-विधान'** । साहित्य की किसी विधा के वस्तु और भाव को समझने के लिए भाषा की आवश्यकता पड़ती है। भाषा के माध्यम से भाव की अभिव्यक्ति होती है तो शिल्प भाषा को सौंदर्य प्रदान करता है। इस आत्मकथा को पढ़ते हुए भाषा की विविधता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। एक ओर जहाँ भाषा में आंचलिक तथा शहरी भाषा का सम्मिश्रण मिलता है तो दूसरी ओर काव्यात्मक भाषा का भी सफल प्रयोग किया गया है। शैली में विविधता है तथा शिल्प की नवीनता आत्मकथा को जीवंत बनाती है।

किसी भी सार्थक कार्य को उसके अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाने में अनेक लोगों का योगदान होता है, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करते रहते हैं। सर्वप्रथम अपने पूज्य माता-पिता और अपने गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, क्योंकि उनके स्नेह और आशीर्वाद के बिना जीवन का कोई भी कार्य संभव नहीं है।

इस लघु-शोध प्रबंध लेखन में शुरुआत से ले कर समाप्ति तक कई ऐसे पड़ाव भी आए जहाँ विषय सामग्री अथवा कार्य की गति को लेकर मैं हतोत्साहित हो गया किन्तु मेरी शोध-निर्देशक **डॉ. प्रीति सागर** का मैं विशेषतः आभारी हूँ जिन्होंने अपना मार्गदर्शन दिया जिससे यह कार्य मैं संपन्न कर सका। मैं साहित्य विभाग के अध्यक्ष **प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** का सहृदय आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने मुझे इस विषय पर कार्य करने की अनुमति प्रदान की। उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

तत्पश्चात मैं अपने बड़े भैया **श्री नीरज कुमार ठाकुर** एवं **श्री धीरज कुमार ठाकुर** का विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूँ क्योंकि इनके सहयोग के बिना यह

शोध कार्य पूरा कर पाना अत्यंत कठिन था। मैं अपनी दोनों भाभी एवं बड़ी बहन का भी आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे मानसिक रूप से शोध कार्य पूरा करने के लिए हमेशा प्रेरित किया ।

अंत में, यद्यपि दोस्तों को धन्यवाद नहीं दिया जाता है पर फिर भी मैं अपने मित्रों मेरे वरिष्ठ **संजीव कुमार झा**, सहपाठी **प्रवेश कुमार**, **मणि कुमार, श्रेया शर्मा** एवं **राजीव कुमार** को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने न केवल अध्ययन में बल्कि अध्ययनेतर विषयों में भी मेरी मदद की जिससे मै एकाग्रचित होकर अपना शोध कार्य पूरा कर सका। मैं इन सभी का आभारी हूँ ।

अंकित अभिषेक